Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

न्याय दर्शन की अवधारणाएँ और बौद्ध चिन्तन

डॉ. रुचि हरीश आर्य
सह प्राध्यापिका, शिक्षाशास्त्र विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,मासी अल्मोड़ा।

सारांश– प्राचीन काल से ही न्याय व्यवस्था के अंतर्गत सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक व्यवस्था को रखा जाता है। न्याय का मुख्य उद्देश्य समाज में, रहने वाले सभी जनमानस में समानता, स्वतंत्रता, समता आदि की भावना का अनुभव, बिना किसी भेदभाव, ऊंच–नीच के कराया जाता है। प्राचीन काल से न्याय की अवधारणा सामाजिक और राजनीतिक चिंतन में महत्वपूर्ण रही है। न्याय का अभिप्राय है सन्मार्ग। सन्मार्ग वही है, जो प्रमाणों से सिद्ध हो जाए। 'न्याय सूत्र' की रचना गौतम अक्षपाद द्वारा की गई। वात्स्यायन के अनुसार न्याय दर्शन में सोलह पदार्थ (प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल जाति और निग्रह स्थान) चार प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान) बारह प्रमेय पदार्थ (आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख तथा अपवर्ग) है। इन बारह प्रमेय के तत्व ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है। न्यायदर्शन के अनुसार ज्ञान का अधिकरण ही आत्मा है। यह सभी का द्रष्टा सभी का भोक्ता, सर्वज्ञ नित्य तथा सर्वव्यापक है। सृष्टि तथा प्रलय ईश्वर की इच्छा से होता है। परंपरागत दृष्टिकोण में मुख्यतः न्याय करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व पर विचार किया जाता था और उसमें सद्गुणों की तलाश की जाती थी जो व्यक्ति को न्याय करने के लिए उपयुक्त बनाती थी। यह दृष्टिकोण न्याय व्यवस्था को बनाए रखने के लिए बिल्कुल उचित था। लेकिन आजकल के समय में इस तरह की व्यवस्था नहीं है, बल्कि आधुनिक चेतना के अनुसार सामाजिक परिवर्तन को करना है।

मुख्य शब्द – धर्म, न्याय, प्राचीन काल, संविधान, बौद्ध धर्म, बौद्ध उपदेश आदि।

न्याय की अवधारणाएँ– व्यापक अर्थों में सामाजिक न्याय का अर्थ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक तीनों तरह के न्याय है। अतः सामाजिक न्याय का अर्थ है की सामाजिक जीवन में स्त्री–पुरुष, काले–गोरे, जाति–धर्म, क्षेत्र आदि के आधार पर किसी को छोटा–बड़ा या ऊंचा–नीचा न माना जाए, और सभी को शिक्षा और विकास के समान अवसर प्राप्त हो और समाज के सभी वर्गों के लोग समाज के साधनों का मिलजुल कर उपयोग कर सकें। आजकल के समय में न्याय के लिए संविधान की आवश्यकता होती है जबकि प्राचीन समय में तत्कालीन धर्म और धार्मिक व्यवस्था से न्याय किया जाता था। यह सत्य है कि धर्म प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक अंग है। धार्मिक विश्वासों पर यह पूरा समाज टिका हुआ है। वास्तव में कोई भी धर्म समाज को बांटने का काम नहीं करता है अगर कोई धर्म ऐसा करता है तो वह वास्तव में धर्म ही नहीं है। धर्म का सृजन तो प्राणियों की सेवा के लिए हुआ है और धर्म का मूल्यांकन सामाजिक मानदंडों और नैतिकता के माध्यम से होना चाहिए अन्यथा धर्म से न्याय की संभावना समाप्त हो जाती है।

न्याय के विषय में प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने कहा है कि–''न्याय मानव का सर्वोपरि तथा सर्वोत्कृष्ट गुण है।..... मनुष्य की न्याय भावना दो स्तरों, व्यक्तिगत तथा सामाजिक पर अभिव्यक्त होती है यह एक ओर

तो व्यक्ति के आदर्श चरित्र का निर्माण करता है, तो दूसरी ओर एक आदर्श समाज की रचना करता है।'' अरस्तु न्याय को सद्‌गुण मानते थे, जब सद्‌गुण विवेक पूर्ण आचरण में बदल जाता है तो न्याय की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार काण्ट नें न्याय की व्याख्या करते हुए कहा है कि न्याय कर्तव्य के लिए कर्तव्य है। इसी प्रकार वार्कर ने न्याय के विषय में बताया है कि न्याय मूल्यों को संयुक्त करता है। मेरियम के अनुसार–''न्याय व्यवस्था वह है जिसके आधार पर प्रत्येक मनुष्य को वह सभी अधिकार दिए जाते हैं जिनको समाज उचित ठहराता है।''

रोमन दार्शनिक सिसरो के अनुसार न्याय आंतरिक शुभदा है, उन्होंने न्याय को कल्याणकारी बनाने के लिए नैतिक दायित्व एवं सद्‌गुणों पर बल दिया। पाइथागोरस ने इस बात पर बल दिया कि किसी न्याय संगत सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक को उसका उचित स्थान मिलना चाहिए। पाइथागोरस में न्याय को प्रेम, मित्रता, सद्‌गुण, आदि संख्याओं पर आधारित माना है। एपिक्यूरस ने कहा है कि न्याय एक सामाजिक समझौता है। कन्फ्यूसियस के अनुसार–''न्याय सभी मनुष्यों का संगठित एवं सामंजस्ययुक्त जीवन यापन है। इसी तरह उपयोगिता वादी दार्शनिक जेरेमी बेंथम एवं जेम्स मिल ने न्याय की धारणा को एक नया आधार प्रदान किया, उन्होंने कहा कि व्यवहारिकता तथा उपयोगिता, सद्‌गुण तथा व्यवहार का मानदंड है। न्याय का मूल्य इसमें निहित है कि वह कितने लोगों को खुशी देता है और सामान्य हित के लिए कहां तक उपयोगी है। हिंदू न्याय शास्त्र में 'धर्म न्याय' की धारणा मिलती है, जिसका अर्थ समता और न्याय से लिया गया है। हिंदू न्याय व्यवस्था में मनुस्मृति का अत्यंत महत्व है। मनु द्वारा बनाए गए नियम धर्म आज भी समाज में प्रचलित हैं। मनु ने न्याय का क्षेत्र निर्धारित करते हुए 18 क्षेत्रों में राजा, ब्राह्मणों और मंत्रियों के साथ राज्यसभा में जाऐं और न्याय करें। श्रीमद्‌भागवद्‌गीता के अनुसार मनुष्य को परिणामों की चिंता किए बिना अपने–अपने वर्ण का पालन करना चाहिए। थ्रसीमेकस ने कहा है कि 'सबलतर' होना ही न्याय है। हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार प्रगति के लिए एकीकरण सिद्धांत परम आवश्यक है। फासीवाद और नाजीवाद के अनुसार न्याय की धारणा शक्ति में निहित है। मुसोलिनी और हिटलर की दृष्टि में 'शक्ति' ही न्याय है। फासिस्टवाद के अनुसार ''व्यक्तिक स्वतंत्रता और समानता ही न्याय है। फासिस्टवाद का कहना है कि व्यक्ति राज्य के लिए है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में तत्कालीन धर्म के लोग अनेक प्रकार की अनैतिकता से ग्रसित थे और उस समय दार्शनिक जगत में उथल–पुथल मची हुई थी। धर्म के प्रति लोग संशय में थे। लोगों का विश्वाश वेद, उपनिषदों आदि में कम हो गया था। नियामक के बिना देश में अराजकता का विस्तार था। समाज की दशा अस्त–व्यस्त थी, उनमें विभिन्न जातियों, वर्णों के कारंण क्लेश व्याप्त हो गया था। इन्हीं परिस्थितियों में भगवान बुद्ध के द्वारा, वाराणसी के पास श्रृषिपत्तन या मृगदाव, जिसको आधुनिक समय में सारनाथ कहा गया है में पंचवर्गीय भिक्षुओं के समक्ष धर्मचक्रप्रवर्तन किया गया तथा बौद्ध धर्म के रूप में एक नया एवं सच्चा धर्म लोगों को समझ में आया। भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों अथवा दर्शन का आधार दो तत्वों को बनाया। प्रथम उन्होंने तत्व दर्शन की जटिलताओं में न जाकर सर्व बोधगम्य आचार संहिता के पालन का उपदेश दिया और दूसरा तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक रीति–रिवाजों का प्रत्यक्ष विरोध न करके एक सुधारक के रूप में तत्कालीन कुरीतियों के प्रतिकार का प्रयास किया। अतः बौद्ध दर्शन में सामाजिक न्याय का सिद्धांत शुद्धता मानवतावादी है यह वैदिक अथवा प्लेटोनिक धारणा से बिल्कुल भिन्न है। बौद्ध दृष्टिकोण 'सामाजिक न्याय' को 'सदाचरण' के साथ जोड़ता है। भगवान बुद्ध को आशा थी की व्यक्तियों के निर्मल मन और शुद्ध आचरण समाज की शांतिप्रिय एवं न्याय संगत व्यवस्था को स्थापित करने में समर्थ होंगे।

न्याय के कई प्रकार हैं जैसे विधिक न्याय, राजनीतिक या धार्मिक न्याय, प्राकृतिक न्याय, आर्थिक न्याय, स्त्री एवं बाल न्याय, वितरणात्मक न्याय, प्रशासनिक न्याय, सामाजिक न्याय आदि और सभी प्रकार के न्याय मानव जीवन में महत्व रखते हैं, परंतु सामाजिक न्याय का महत्व सर्वोपरि है, क्योंकि उसमें न्याय के सभी पक्षों का समावेश है। सामाजिक न्याय में संपूर्ण समाज की व्यवस्था दृष्टिगत होती है। गरीबी, दरिद्रता मिटाना, स्त्रियों को सम्मान प्रतिष्ठा देना, संपत्ति एवं प्रशिक्षण के झगड़ों का निपटारा करना, अभावग्रस्त लोगों को सहायता देना, पिछड़े वर्ग के लोगों को आरक्षण देना, राजनीतिक अधिकारों को कमजोर वर्ग के लोगों के लिए सुलभ करना, धार्मिक सद्‌भावना कायम करना आदि सामाजिक न्याय के ही विभिन्न पक्ष हैं। सामाजिक न्याय का संबंध समानता एवं भाईचारे से है, जो समस्त नागरिकों को बंधुत्व में बाँधने का प्रयास करता

है फिर चाहे वह अमीर हो या गरीब, हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, किसी भी जाति का हो, सभी नागरिक समान है, यह सामाजिक न्याय की मूल अवधारणा है।

बौद्ध धर्म

जैसा कि पहले बताया गया है कि बौद्ध धर्म से पहले सामाजिक क्षेत्र में वैदिक संस्कृति द्वारा प्रतिस्थापित वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा व्याप्त थी और उसका प्रबल विरोध हो रहा था। भगवान बुद्ध के द्वारा सामाजिक समानता का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया, जिसका लोगों पर गंभीर प्रभाव पड़ा। बुद्ध ने मनुष्यों की समानता के विषय में वैज्ञानिक तार्किक एवं व्यवहारिक तर्क प्रस्तुत किए हैं जो आज भी मान्य है और जो मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत हैं। राजनीतिक दृष्टिकोण से 'गणतंत्रात्मक पद्धति' का इस युग में प्रचलन हो चुका था और कुछ राज्यों में यह व्यवस्था लागू हो गई थी। इस व्यवस्था का बुद्ध के ऊपर गंभीर प्रभाव पड़ा था, और उन्होंने अपने संघ की स्थापना गणतंत्रात्मक मूल्यों जैसे समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय पर आश्रित की थी। वैदिक संस्कृति में एक वर्ण के द्वारा दूसरे वर्ण के शोषण का प्रावधान था, जिसका बुद्ध के द्वारा विरोध किया गया। धार्मिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में वैदिक मान्यताएं अंधविश्वासों पर निर्भर थी जिनका बुद्ध ने विरोध किया एवं उनकी कटु आलोचना भी की। बुद्ध ने अपने युग के अन्य प्रचलित मान्यताओं को भी मिथ्या बताकर अपने समाज दर्शन को प्रतिस्पिठात किया।

बुध के युग में अनेक धार्मिक विश्वास एवं दार्शनिक मत प्रचलित थे परंतु उस युग में मूल रूप से वैदिक समाज दर्शन का प्रचलन था। वैदिक समाज दर्शन में कमियों के कारण ही महावीर ने समाज के सर्वागीण विकास के लिए चार्तुयाम पर आश्रित समाज दर्शन की स्थापना की। इस समाज दर्शन में हिंसा न करनाए चोरी न करना, झूठ नहीं बोलना, अपरिग्रह रखना एवं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के सिद्धांत प्रतिस्थापित थे। इस युग में मक्खलीगोसाल, पूरणकाश्यप, अजितकेसकम्बली, पकुधकच्चायन और संजयबेलठ्टीपुत्त जैसे प्रभावशाली दार्शनिक थे, परन्तु इनकी दार्शनिक मान्यताएँ इतनी अव्यवहारिक थीं की समाज द्वारा उन्हें ग्रहण नहीं किया गया।

उस युग में बुध का समाज दर्शन अत्यंत महत्वपूर्ण था क्योंकि बुद्ध ने उस समय के सामाजिक मूल्यों को परिवर्तित कर दिया था। वैदिक समाज दर्शन के मुख्य आधार वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, रामायण और महाभारत आदि ग्रंथ थे। इन ग्रंथों में जो भी सामाजिक मान्यताऐं और आस्थाऐं बताई गई थीं, वही वैदिक समाज दर्शन की आधारशिला बनते चले गए। बुद्ध ने वेदों को मनुष्य द्वारा निर्मित बता कर समाज दर्शन के मूल्यों को ही परिवर्तित करके रख दिया। बुध के समाज दर्शन का मुख्य आधार वह धर्म है, जिसमें नैतिक मूल्यों का समावेश रहता है। धर्म के द्वारा ही छल कपट को छोड़कर मनुष्य के मन को निर्मल बनाया जा सकता है। बौद्ध धर्म में यह भी बताया है, कि मनुष्य के लिए केवल विद्वान होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि मनुष्य को प्रज्ञा का अनुसरण करना चाहिए और प्रज्ञा को नियंत्रित करने के लिए मनुष्य में शील का होना भी अनिवार्य है और शील के साथ–साथ करुणा और करुणा के साथ–साथ मैत्री का होना आवश्यक है। इस प्रकार बौद्ध धर्म के समस्त समाज दर्शन का मुख्य आधार प्रज्ञा, शील, करुणा और मैत्री हैं। समाज के परिपेक्ष में बुध के समाज दर्शन का सर्वोच्च उद्देशय बहुजन का हित, उनका सुख है। मनुष्य का कल्याण ही बुध के समाज दर्शन का मुख्य बिंदु है और मानव जीवन के समस्त प्रकार के दुखों का अंत करना ही बुद्ध दर्शन का उद्देश्य था। इसीलिए बुद्ध ने सभी वैदिक मान्यताओं जैसे यज्ञ में दी जाने वाली बली प्रथा, जिसमें निरीह पशुओं की बली दी जाती थी, वर्ण व्यवस्था और जाति आदि व्यवस्थाओं का विरोध किया है। बुध के द्वारा इस प्रकार के समाज दर्शन को जन्म दिया गया जो समाज से समस्त प्रकार के शोषण और अन्याय को समाप्त करके स्वतंत्रता, समानता, बधुत्व और न्याय की स्थापना कर सकें। किसी भी समाज दर्शन के निर्धारण में नैतिक मूल्यों का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। सामाजिक परंपराओं को यदि नैतिक मूल्यों के द्वारा सही निर्देशित किया जाए तो वह व्यक्ति का कल्याण कर सकती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और द्वेष आदि को नैतिक मूल्यों द्वारा ही काबू किया जा सकता है। और इसीलिए नीतिशास्त्र का जन्म होता है। नैतिक मूल्य ही समाज के आवरण को नियंत्रित करते हैं। किसी भी क्षेत्र में मनुष्य के क्रियाकलाप नैतिक मूल्यों के द्वारा नियंत्रित रहते हैं।

बुद्ध ने वैदिक समाज दर्शन का विरोध किया क्योंकि उसमें मनुष्य के द्वारा किए गए समस्त कर्म ईश्वर की इच्छा के अधीन हैं, ऐसा माना जाता है। जबकि बुध के नीति शास्त्र में मनुष्य कर्म करने में पूर्णता

स्वतंत्र है और समस्त कर्मों का उत्तरदायित्व मनुष्य पर स्वयं ही होता है किसी और पर नहीं। इस संदर्भ में बुध ने कहा है–''जो अपने कि आप को प्रेरित करेगा, अपने ही आपको संलग्न करेगा, वह अपने ही द्वारा रक्षित स्मृतिमान विक्षु सुख से बिहार करेगा।'' बुद्ध ने आगे कहा है कि मनुष्य अपना स्वामी आप है और अपने आप ही अपनी गति है, इसलिए अपने आप को संयमी बनाए, जैसे कि सुंदर घोड़े को एसका मालिक संयत करता है। अर्थात बुद्ध का कहना है कि मनुष्य अपने कर्मों का स्वयं ही जिम्मेदार है। बुध के धर्म का मूल आधार पंचशील हैं जिसमें प्रथम अहिंसा, द्वितीय चोरी न करना, तृतीय व्यभिचार न करना, चौथे में सच बोलना और पांचवें में मादक द्रव्यों से दूर रहने की बात कही गई है।

अष्टांगिक मार्ग में बुध ने निम्नलिखित मूल्यों का प्रतिपादन किया है उसका अनुशीलन कर मनुष्य दुखों का अंत कर सकता है। अष्टांगिक मार्ग की आठ बातों को ज्ञान (जिसमें सम्यक, दृष्टि और संकल्प शामिल हैं), सदाचार या शील (जिसमें सम्यक, कर्म, वचन और आजीविका शामिल हैं), योग या समाधी (जिसमें सम्यक, व्यायाम, समृति और समाधि शामिल हैं) में विभक्त किया है।

बौद्ध धर्म एवं न्याय

सामाजिक रूप से देखा जाए तो बौद्ध धर्म मानव जीवन में व्याप्त दुख को कम करके समाप्त करने का प्रयास करता है। प्रथम आर्यसत्य की व्याख्या करते हुए भगबान बुद्ध कहते है कि जन्म, बुढ़ापा, मरण, शोक, रूदन, मन की खिन्नता, अप्रिय से संयोग, प्रिय से वियोग, इच्छित बस्तु की प्राप्ती न होना आदि सभी दुख हैं। बुद्धकाल में समाज क्षत्रीय, वैश्य और शूद्रों में विभाजित था। इसके पश्चात भी यह चार वर्ण अपने व्यवसाय और सामाजिक स्तर के कारंण अनेकों जातियों और उपजातियों में बँट गए। कई जातियाँ बेमेल विवाह के कारंण अस्तित्व में आ चुकी थीं। इन वर्णसंकर जातियों को, मिश्रित रक्त के कारण, अत्यंत निम्न जातियों में रखा गया था। इस प्रकार की सभी जातियां अस्पृश्य थीं, और जिन्हें शूद्रों और दासो से भी निम्न कोटि का माना जाता था। बल्कि यह जातियां तो पशुओं से भी हीन समझी जाती थीं। समाज में ऋग्वेद काल से दास प्रथा चली आ रही थी। दासों की दशा बहुत खराब होती थी, उनके कोई सामाजिक अधिकार नहीं होते थे और पशुओं की तरह ही मेले लगा कर उनकी खरीद–फरोख्त की जाती थी। उसी तरह उस युग में नारी समाज की स्थिति भी अत्यंत दयनीय और नारकीय थी। बुद्ध के समय में नारी समाज की स्थिति एक दास की तरह थी। मनु ने समाज में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है–''पुरुषों को चाहिए कि वे अपने अधीन स्त्रियों को कभी स्वेच्छाचारी न बनने दें। वे विभिन्न विषयों में लगी हुई भी अपने वश में रहे ऐसा यतन करें।'' इसी तरह मनु ने स्त्रियों को दास के समान रखा है। अतः बौद्ध के समय स्त्रियों की दशा अत्यंत सोचनीय थी। कहा जा सकता है कि वेदों का युग अस्पृश्यों, शूद्रों, दासों, निम्न जातियों और स्त्री जाति के लिए नर्क के समान था। इस युग में उन्हें बेचने–खरीदने का प्रावधान 'विधि' व न्याय संगत माना गया था। उस समाज में इन लोगों के लिए समानता, स्वतंत्रता, न्याय आदि की बात सोची भी नहीं जा सकती थी। इस युग में अस्पृश्यों, शूद्रों, दासों, निम्न जातियों और स्त्री जाति के प्रति अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण, अन्याय आदि का कारण केवल वैदिक समाजिक परंपराएं ही नहीं थी बल्कि उन परंपराओं, मान्यताओं को विधि सम्मत कहा जाता था ताकि कोई व्यक्ति इसके प्रति आवाज न उठा सके। इस युग के बारे में आधुनिक विचारक एस.एस. राघवाचार्य का कथन है कि भगवान बुद्ध के आविर्भाव से ठीक पहले का समय भारतीय इतिहास का सर्वाधिक अंधकारमय युग था। आत्मत्याग या चित्त की पवित्रता आदि जैसे यथार्थ नैतिक विचारों को उस समय के नैतिक चिंतन में कोई भी उपयुक्त स्थान प्राप्त न था।

इस प्रकार वैदिक युग पर दृष्टि डालने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस युग में सामाजिक न्याय के लिए किंचित मात्र भी स्थान नहीं था। बुद्ध ने इन बातों का बड़े ध्यान से अवलोकन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि इन सबका कारण वर्ण व्यवस्था और विभिन्न प्रकार की जाति व्यवस्था है। बुध का ह्रदय मानवीय भावनाओं और नैतिक मूल्यों से भरा था और इस विकट समस्या के समाधान के लिए उन्होंने ''सब समान हैं'' का उपदेश दिया और बताया कि जन्म अथवा व्यवसाय के आधार पर मनुष्य मनुष्य में भेद करना अनुचित एवं प्रकार अप्राकृतिक है। प्राकृतिक दृष्टि से सभी मनुष्य प्रकृति के पुत्र हैं और इसीलिए आपस में सब भाई–भाई हैं और सबको मैत्री–पूर्वक रहना चाहिए।

वैदिक धर्म के अनुसार दास प्रथा को मान्यता प्राप्त की और स्त्रियों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध था जोकि मनु द्वारा बनाए नियमों के अनुसार था। बुध ने इस सामाजिक व्यवस्था को सुधारने के लिए प्रज्ञा,

शील, मैत्री और करुणा के मूल्यों के अनुशीलन करने को कहा। शील का तात्पर्य पंचशील, अष्टशील और अष्टांगिक मार्ग हैं और इनका पालन करने से व्यक्ति सदाचारी और आदर्श चरित्र वाला बनता है। मैत्री और करुणा बौद्ध नीतिशास्त्र के ऐसे मूल्य हैं जिनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य से ही नहीं, बल्कि प्रत्येक प्राणी के प्रति मैत्री भावना रखना चाहिए। मैत्री भावना से मनुष्य में बधुत्व, स्वतंत्रता, समानता और न्याय के मूल्यों का बीजारोपण होता है। जहां स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व आदि मूल्य उपस्थित हों वहां उत्पीड़न, शोषण आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। करुणा में समस्त जीवो की दयनीय स्थिति के प्रति दया की भावना रखना है। अगर समाज में करुणा का भाव उत्पन्न हो जाए तो अमूल्यों का अस्तित्व में आना असंभव है।

इन्हीं सब मूल्यों की वजह से बुद्ध के धर्म द्वारा सर्वोच्च साध्य दुखों की समाप्ति होती है। वास्तव में बुध ने जो मार्ग दिया था वह अंधविश्वास, अविद्या और अन्य किसी वाहरी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा नियंत्रित नहीं था, बल्कि मनुष्य का अपना चित्त ही उसका नियंत्रण करता था। इसलिए बुध ने अपने आपको 'मार्ग दाता' कहा है, मोक्ष दाता नहीं।

निष्कर्ष– इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि बुद्ध ने सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समता तथा बंधुत्व के परिपेक्ष में अपना उपदेश दिया। सामाजिक न्याय तत्कालीन समाज की आवश्यकता थी, और आज भी इसकी आवश्यकता महसूस की जा रही है। एक समय जब बुद्ध निरंजना नदी के किनारे, राजपाल बरगद के नीचे, बिहार कर रहे थे तभी दुष्ट मार ने उनसे परिनिर्वाण प्राप्त करने की विनती की जिस पर उन्होंने कहा पापी मैं तब तक परिनिर्वाण को प्राप्त नहीं होऊंगा जब तक मेरे भिक्खु, भिक्खुणी, उपासक, श्रावक आदि धर्म के मार्ग पर आरूढ़ होकर, धर्मानुसार आचरण करने वाले अपने सिद्धांत को ठीक से पढ़ कर व्याख्या करने वाले, उपदेश देने वाले, नहीं बन जाएंगे। बुद्ध की यह इच्छा काफी हद तक पूरी भी हुई। उनके भिक्खुओं ने बौद्ध धर्म को कई देशों में फैलाया और स्वयं भी उनके बताए रास्ते पर चलते रहे। बुद्ध के समाज दर्शन की आधारशिला मनुष्यों में समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे की भावना और सामाजिक न्याय है।

संदर्भ

1. अम्बेडकर बी.आर., भगबान बुद्ध और उनका धर्म, 1991.
2. कोसंबी, धर्मानंद, अनुवादक श्रीपाद जोशी, भगबान बुद्ध, 1982.
3. दीघनिकाय
4. मज्झिनिकाय
5. राहुल सांकृत्यायन, महामानव बुद्ध, 1956.
6. मदन मोहन सिंह, बुद्धकालीन समाज और धर्म, 1972.
7. कट्टहारी
8. मद्दसाल जा
9. धम्मपद ब्राह्मण
10. पालि त्रिपिटक